P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-II * Issue-XII*August-2015

कमलेश्वर के उपन्यास ''तीसरा आदमी'' में अभिव्यक्त यथार्थ

अनिता प्रजापत
व्याख्याता,
हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, नोहर,
हनुमानगढ़, राजस्थान

सीता गौड़
व्याख्याता,
हिन्दी विभाग,
डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय,
श्री गंगानगर

सारांश

कमलेश्वर के 'तीसरा आदमी' उपन्यास में कस्बाई एवं महानगरीय जीवन की आर्थिक–सामाजिक स्थितियों की यथार्थ झांकी प्रस्तुत की गई है। निम्नमध्यवर्गीय जीवन के संघर्ष एवं आथिक दबाव को चित्रित करते हए कमलेश्वर ने इस उपन्यास में महानगरीय परिवेश में आवास की समस्या, मंहगाई, भीड़, कोलाहल, अजनबीपन, अकेलापन का वास्तविक अंकन किया है। पति–पत्नी के बीच तीसरे की उपस्थिति से उभरते मानसिक द्वन्द्व, तनाव एवं मनःस्थिति को अत्यन्त सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है। उपन्यासकार ने आम आदमी की समस्याओं के गहरे संदर्भों के बीच से गुजरते हुए स्वातंत्र्योत्तर भारत के आम आदमी की जिन्दगी और उसकी विसंगतियों का विश्वसनीय चित्रण किया है। आर्थिक एवं मानसिक समस्याओं से निरन्तर जूझते, टूटते कस्बाई युवक नरेश को यहाँ महानगरीय जीवन से ऊबकर कस्बे की ओर लौटते हुए चित्रित किया गया है।

मुख्य शब्द : यथार्थ, मध्यवर्ग, महानगर, आर्थिक–दबाव।

प्रस्तावना

हिन्दी कथाकारों में विशिष्ट स्थान रखने वाले कमलेश्वर ने कहानी, उपन्यास, पत्रकारिता, स्तम्भ–लेखन, फिल्म पटकथा जैसी अनेक विधाओं में अपनी लेखन प्रतिभा का परिचय दिया। 'कितने पाकिस्तान' जैसी महान् कृति के कारण वे विशेष चर्चा में रहे। कमलेश्वर के साहित्य में आधुनिक जीवन के गहरे संघर्षों विद्रूपों, अन्तर्द्वन्द्वों का अंकन हुआ है। उनके यथार्थवादी लेखन ने रचनात्मकता के साथ–साथ जीवन और इतिहास के उदार चिंतन के नए द्वार भी खोल दिए हैं।

कमलेश्वर ने अपने उपन्यासा में कस्बाई एवं महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन की विरोधाभास पूर्ण स्थितियों, विसंगतियों, जटिलताओं और भटकाव का चित्रण किया है। आम आदमी की परिवेशजन्य समस्याएँ उनके लेखन को विशिष्ट बनाते हुए वर्तमान व्यवस्था का सटीक चित्र प्रस्तुत करती है। उनके उपन्यास 'तीसरा आदमी' में महानगर में संघर्षरत एक मध्यवर्गीय परिवार के रचाव, बसाव, मनमुटाव और संशय का अंकन किया गया है। जीवनयापन के लिए किये गये संघर्ष और आर्थिक दबाव के तनाव ही उपन्यास के मूल में है। आत्मकथात्मक शैली में लिखा हुआ यह लघु उपन्यास कस्बाई और महानगरोय जिन्दगी की जुड़ती हुई कड़ी के रूप में सामने आता है।

प्रस्तुत उपन्यास में कमलेश्वर ने कथानायक के परिवार के माध्यम से निम्न मध्यमवर्गीय परिवार के सामाजिक–आर्थिक यथार्थ का चित्रण किया है। इलाहाबाद और दिल्ली की पृष्ठभूमि में निम्न मध्यवर्गीय जीवन की मजबूरियों आर संघर्ष का यहाँ वास्तविक अंकन हुआ है। कमलेश्वर स्वयं इलाहाबाद और दिल्ली में रहे हैं। वहाँ की स्थितियाँ और वास्तविकताएँ उन्होंने देखी है, भोगी है। जहाँ इलाहाबाद कथाभूमि के रूप में उपस्थित है वहाँ लेखक ने परिवार, विवाह, समाज आदि का परम्परागत रूप प्रस्तुत किया है। परम्परागत मूल्यों और पारिवारिक संहिता का समर्थन किया ह। जहाँ दिल्ली के महानगरीय परिवेश का चित्रण किया है। वहाँ महानगरीय जीवन की विसंगतियों, अनिश्चितताओं, मजबूरियों और त्रासद स्थितियों के कारण मानसिक तनाव को झेलते दम्पति का चित्रण है। इलाहाबाद में रहने वाला यह परिवार परम्परागत संस्कारों और मूल्यों से युक्त है। जहाँ निर्णय लेने का अधिकार परिवार के मुखिया के पास हैं तथा घर के सभी सदस्य उनकी इच्छानुसार ही कार्य करते हैं। घर के सभी सदस्यों के व्यक्तित्व अलग–अलग होते हुए भी सभी व्यक्तित्व एक घर के लिए समर्पित हैं। घर के बच्चों में पारिवारिक आदर्श संस्कार अभी बने हुए हैं। कथानायक के विवाह के अवसर पर लेखक ने परिवार के मध्यवर्गीय संस्कारों का चित्रण किया है। नरेश जब विवाह करके लौट रहा होता है, उस समय लिहाज के कारण वह

चाहकर भी अपनी पत्नी के साथ नहीं बैठता। वह बताता है– ''बैठना मुझे भी साथ ही था, पर कुछ दोस्तों की फब्तियों के कारण और कुछ बुजुर्गों के खयाल से मैं सबके साथ आकर बैठ गया। दिन का वक्त था, और यह अच्छा भी नहीं लग रहा था कि मैं अपनी बीवी के पास ही बैठा रहूँ। मन में भावनाएं तो बहुत उमड़ रही थी, पर अजीब–सा लिहाज खाये जा रहा था। हमारे घरों की स्थिति भी कुछ ऐसी ही थी। काफी पढ़लिख लेने के बावजूद अभी आँख की शर्म बाकी थी, और इतना लिहाज करना जरूरी भी था।''[1] ग्रामीण कस्बाई परिवेश और मध्यम वर्ग में बड़ों से यह संकोच, शर्म बहुत स्वभाविक है और बड़े बुजुर्ग भी बच्चों से यही अपेक्षा करत हैं। नरेश के पिता भी जब नरेश को अन्य लोगों के साथ बैठे देखते हैं तो गर्व का अनुभव करते हैं कि इस जमाने में भी उनके जैसा लायक लड़का हो सकता है।

निम्न मध्यवित्तीय स्थिति वाले परिवारों में व्यक्तिगत हितों की बजाय परिवार के सामूहिक हितों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। ऐसा करना परिवार की मजबूरी भी होती है क्योंकि आर्थिक साधनों की सीमितता के कारण अलग–अलग सबकी जरूरतें पूरी करना सम्भव नहीं हो पाता। कम साधनों से, कम वस्तुओ से, मिलजुलकर काम चलाना ही ऐसे परिवारों की नियति और अदृश्य नैतिक नियम होता है। आलोच्य उपन्यास में लेखक बताता है कि कथानायक के परिवार में साइकिल, बक्सा, कपड़े, चप्पल लाने की बात हो या फिर नरश के विवाह और नौकरी लगने की बात हो, सभी कुछ घर के सामूहिक हितों को देखते हए किया जाता है। नरेश बताता है–''घर में जूते तो सबके अलग–अलग आते थे, पर चप्पले कुछ इस तरह खरीदी जाती थी कि जिनसे एक–दूसरे का काम भी निकल जाये। बाबूजी की चप्पल मेरे काम आ जाती थी और बहनों की चप्पलें जरूरत के वक्त माँ की इज्जत रख लेती थी। बहनों के पास साड़ियाँ भी ऐसी ही थी जो बदल–बदल कर एक–दूसरे के काम आती रहती थी।''[2] कथानायक की नौकरी लगने की बात उठती तो उसे इस रूप में लिया जाता कि घर सुधर जायेगा या घर का नाम होगा। शादी की बात चलती तो घर में बहू लाने की बात हाती, नरेश की बीवी नहीं। नरेश की शादी के पीछे घर का एक हित यह भी सोचा जाता है कि जो कुछ थोड़ा बहुत सामान आयेगा, उससे लड़की की शादी में मदद मिलेगी। परिवार में सभी ने अपनी–अपनी रूचियों और व्यक्तिगत सुविधाओं को कुछ कम कर रखा था। छोटी–छोटी सविधाओं और जरूरतों के लिए आपस में तालमेल बिठाते हुए, इच्छाओं को कम करते हुए किसी तरह जीवन व्यतीत करना ही मध्यवर्ग की नियति है, जिसका यथार्थ वर्णन कमलेश्वर ने किया है। यह कमलेश्वर का भोगा हुआ यथार्थ है। खोखले जमींदार घराने के जिस माहौल में वे पले थे, संघर्षों और अभावों में जैसे उनका बचपन बीता था, इसका जो वर्णन कमलेश्वर ने किया है, वह बहुत कुछ नरेश के परिवार की आर्थिक स्थिति से साम्य रखता है।

स्वतंत्र जीवन शैली और आर्थिक विकल्पों की उपलब्धता के कारण महानगर युवाओं के आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं। प्रस्तुत उपन्यास का नायक जो कि रेडियो अनाउन्सर है, अपना तबादला इलाहाबाद से दिल्ली करवाना चाहता है। वह सोचता है कि बेहतर दुनिया के दरवाजे उसका इन्तजार कर रहे हैं। जिन्हें उसे खोलना है और वे दरवाजे दिल्ली में ही है। वह कोशिश करके किसी तरह दिल्ली पहुँचना चाहता है। उसे लगता है कि वहाँ पहुँचने पर तमाम और रास्ते खुल जाएंगे। इलाहाबाद में प्रमोशन का कोई मौका नहीं होगा। दूसरी ओर इलाहाबाद में घूमने–फिरने की जगह और आजादी का अभाव भी नरेश को खलने लगता है। वहाँ ऐसी कोई जगह नहीं थी, जहाँ वह पत्नी को लेकर जा सकता। वह कहता है– ''शादी के बाद इलाहाबाद मुझे छोटा शहर लगने लगा था। कभी सोचता कि चित्रा को लेकर कहाँ जाऊंगा ? कोई जगह ही नजर नहीं आती थी। ले दे के सिविल लाइन्स थी, वहाँ भी काई ऐसी जगह नहीं थी, जहाँ निश्चिन्त होकर घूमा जा सके... या अगर घूमें तो किसी की नजर न पड़े। लेकिन वहाँ तो नजरे हीं नजरें थी और उनसे बच निकलने का कोई रास्ता नहीं था। वहाँ बीवियों को लेकर घूमने का रिवाज भी नहीं था। वह उस शहर के मिजाज के खिलाफ बात थी।''[3]

बेहतर दुनिया की तलाश में कथानायक अपना तबादला दिल्ली करवा लेता है जहाँ उसे महानगरीय जीवन की अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। दिल्ली जैसे महानगर में आकर आवास की समस्या, मंहगाई, नौकरी में असुरक्षा व असंतुष्टि, अजनबीपन, भीड़भाड़, घुटन भरे माहौल आदि को झेलते–झेलते नरेश की जिन्दगी की सार्थकता ही मर जाती है। वह कहता है–''दिल्ली में आकर तो मैं और भी गरीब हो गया था। मन में कहीं यह बात भी टीसती रहती थी कि दिल्ली आकर मैंने अपनी खुदी को और भी खो दिया है। इलाहाबाद में तो फिर भी कुछ होने का अहसास होता था, लगता था कि कुछ लोग मुझे जानते हैं।''[4]

दिल्ली जैसे महानगर में कम आमदनी से गुजारा करना बहुत ही मुश्किल है। वहाँ कम किराये में रहने लायक मकान नहीं मिल पाता, इसलिए सीमित आय वाले व्यक्तियों को सीलन भरे, बदबूदार मकानों में ही गुजारा करना पड़ता है। आवास की इस समस्या का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। नरेश जब अपनी पत्नी चित्रा को लेकर दिल्ली जाता है तो उसे अपने रिश्ते के भाई सुमंत के यहाँ एक कमरे में रहना पड़ता है। नरेश कहता है ''सुमन्त कुतुब रोड़ पर आराम नगर के एक निहायत गंदे कमरे में रहता था। सीलन भरा वह कमरा पसीजता रहता था। पहली बार जब चित्रा आई तो उसी एक कमरे में हम तीनों को टिकना पड़ा। .....बड़ी घनघोर बारिश हुई थी और हमारे कमरे की दीवारें नम हो गई थी। सीमेन्ट जगह–जगह से उखड़ गया था, जिसकी वजह से उनमें से पानी छनता था। सड़ते कूड़े और मलब की महक से दिमाग भन्नाने लगता। भीगे कपड़ों की बदबू से माथा चकराने लगता था और गीले तौलिये से बदन पोंछते–पोंछते सभी के तनों से बदबू फूटने लगी थी। .... गली में लेटना मुमकिन नहीं था, इसलिए हम तीनों ही नीचे जमीन पर जैसे–तैसे गुजारा कर लेते थे...।''[5]

ऐसे कमरे और घुटन भरे माहौल में रहते रहते व्यक्ति में अनमनापन, अजनबीपन, अलगाव, निरर्थकता

बोध, उदासी आ जाना स्वाभाविक ही है। नरेश, चित्रा और सुमन्त आपस में अजनबियों की तरह पेश आने लगते हैं। नरेश और चित्रा को एकांत मिलना दुर्लभ हो जाता ह। घर से बाहर निकलने पर चारों और भीड़ और कोलाहल होता। नरेश कहता है ''जब भी मैं अकेला होता, हमेशा यही सोचता रहता कि जिन्दगी की यह गाड़ी इतने अनमनेपन से कैसे चलेगी? इतने अलगाव और अजनबीपन से जिन्दगी का यह सारा वक्त कैसे कटेगा ? बार–बार मैं अपने को टटोलता... और फिर चित्रा की तरफ से अपने बारे में सोचता। लगता था कि जैसे इतने थोड़े से दिनों में ही हमारे बीच एक अजीब–सा ठण्डापन भर गया है। हम दोनों जैसे एक–दूसरे के साथ यह विवाहित जीवन जीने के लिए कुछ–कुछ से मजबूर थे।''[6]

लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में कार्यक्षेत्र की ऊब, एकरसता, असुरक्षा की स्थिति का भी वास्तविक चित्रण किया है। कथानायक नरेश का रेडियो उद्घोषक की नौकरी करना घर वालों के लिए जहाँ गर्व का विषय था, वहीं नरेश स्वयं इस नौकरी से संतुष्ट नहीं था। वहाँ पर वह हमेशा असुरक्षित महसूस करता था। एक तो इस तरह की नौकरी में जाने के बाद व्यक्ति कहीं और काम लायक नहीं रह जाता। दूसरे तनख्वाह इतनी कम होती है कि छोटे शहर में तो किसी तरह गुजारे की बात सोची जा सकती है पर दिल्ली जैसी जगह पर यह नामुमकिन है। कमलेश्वर ने भी रेडियो की नौकरी की थी और खूब आर्थिक तंगी झेली थी। यहाँ नरेश के माध्यम से लेखक ने मानों अपने ही आर्थिक हालात का यथार्थ वर्णन किया है। कथानायक बताता है ''रेडियो स्टेशन पर भी मन नहीं लगता था। रेडियो एक सुहावना ढोल था, जिसे दूर से सुनकर सब खुश होते थे, पर उसके भीतर जो पोलें थी, वे हम लोग ही जानते थे। मेरी नौकरी ऊपर से चाहे जैसी लगती हो, पर मैं वहाँ एक दिन के लिए भी सुरक्षित महसूस नहीं करता था।.... रेडियो ने सभी को इतना निकम्मा कर दिया था कि कोई भी कहीं और काम लायक नहीं रहा था। वहाँ रहते–रहते मेरे भोतर का इंसान भी मरता जा रहा था। तनख्वाह भी कोई अच्छी नहीं थी। अगर मैं रेडियो की नौकरी छोड़कर निकलता तो मेरे लिए कहीं कुछ भी नहीं था। मुझे कोई एक कौड़ी को नहीं पूछता। यह नौकरी ही ऐसी है जो आदमी को बेकार कर देती है। वह किसी लायक नहीं रह जाता। और जगहों का अनुभव जिन्दगी में बहुत काम देता है, पर यहाँ का अनुभव और कामों के लिए बेकार कर देता है।''[7] नरेश के माध्यम से लेखक ने ऐसे युवक की छटपटाहट और बैचेनी का वास्तविक चित्रण किया है जो अपनी नौकरी और वेतन को लेकर असन्तुष्ट तो है लेकिन बकारी के भय से उससे मुक्त नहीं हो पाता। अभावों के बीच बेकारी झेलना और भी दुःखदायी होता है। नरेश इस नौकरी में रहते हुए, अपने को व्यर्थ महसूस करते हुए भी उससे चिपका रहता है। उसकी गरिमा, उसका रचनात्मक अहं और प्रयत्नशीलता को मानों कुचला जा रहा हा। ऐसा महसूस करते हुए भी वह चाबी भरे इंसान की तरह चलता रहता है, जिसमें अपना दिमाग और दिल जैसे नहीं रह गया हो। रेडियो की तरह वह भी लगातार बजता जा रहा था।

बढ़ती मंहगाई और कम आमदनी के कारण निम्न मध्यवर्गीय परिवार के लिए महानगर में गुजारा करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। हर महीने तनख्वाह कम होती लगती है और व्यक्ति कर्ज के बोझ तले दबता जाता है। दो सौ रूपया महीना कमाने वाले नरेश के आर्थिक हालात के माध्यम से कमलेश्वर ने महगाई, ऋणग्रस्तता से जूझते व्यक्ति का यथार्थ चित्रण किया है। नरेश खराब आर्थिक स्थिति के बारे में कहता है ''दिन–ब–दिन जीना दूभर होता जा रहा था। जरा–जरा सी चीज की किल्लत थी। मेरे दोस्त का तबादला हो गया था, इसलिए कमरे का किराया भी पूरा पड़ने लगा था और गुड्डू के खर्चे भी बढ़ते जा रहे थे। आमदनी वही थी, बढ़ती हुई मंहगाई के कारण लगता था कि हर महीने तनख्वाह कम होती जा रही है। बड़ी खींचतान रहती। ....दिल्ली के कर्जदारों से मैं परेशान आ गया था।...[8]

कमलेश्वर ने नरेश और चित्रा के माध्यम से विवाह–सम्बन्धों में आये परिवर्तन का भी विश्वसनीय अंकन किया है। नरेश जब इलाहाबाद से दिल्ली आता है तब वह सोचता है कि वह चित्रा के साथ अब गहरी आत्मीय निकटता महसूस कर सकेगा। अकेले रहते हुए अपनी भावनात्मक दुनिया में एक दूसरे पर इतने निर्भर हो जायेंगे कि उनका एक दूसरे के बगैर रहना मुश्किल हो जायेगा। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हो पाता। एकान्त क्षणों के अभाव और संशय के कारण वे दोनों एक–दूसरे को आन्तरिक गहराई से महसूस नहीं कर पाते। उनमें आत्मीयता नहीं आ पाती। नरेश महसूस करता है कि अब विवाह का कोई अर्थ नहीं रह गया है। विवाह का परम्परागत स्वरूप अब नष्ट हो गया है, उसकी सामाजिक अपेक्षाएं बदल गई है। वह कहता है ''शादी तो इस बात की गारन्टी नहीं है कि पुरूष और नारी प्यार भी करेंगे ही। यह रिश्ता तो सिर्फ रहम का रह गया है। इसके अलावा और क्या है इसमें ? ...छल के सिवाय अब इस रिश्ते में बाकी क्या बचा है ? यही कि व्यक्ति स्वयं को छलता रहे और दूसरे द्वारा छला जाता रहे। मेरे ख्याल से अब मक्कारों के विवाह ही सफलतम सिद्ध हो सकते हैं, या फिर बुद्धुओं के। नहीं तो यह अब एक सतत् अत्याचार और अनाचार के रूप में सिमटकर रह गया है।''[9] साथ–साथ रहते हुए भी उनमें संवाद हीनता की स्थिति बन जाती है। वे महसूस करते हैं कि इतने दिन हम मात्र अपनी सुविधाओं और मजबूरियों के कारण ही साथ–साथ जी लिये थे। उनके आपसी सम्बन्ध धीरे–धीरे बिखरते चले जाते हैं।

पति–पत्नी के सम्बन्धों में संदेह और अविश्वास जहर का काम करता है। आलोच्य उपन्यास में कथानायक के मन में चित्रा और सुमन्त के सम्बन्ध को लेकर संदेह घर कर जाता है। उसे अपने और चित्रा के बीच हमेशा तीसरे आदमी–सुमन्त की छाया मँडराती दिखाई देती है। वह मन ही मन घुटता रहता है, जीवन से उसका मोह भंग हो जाता है, वह पलायनवादी हो जाता है। एक बार छुट्टी लेकर भोपाल अपने माता–पिता के पास चला जाता है फिर लौटकर दिल्ली से अपना तबादला पटना करवाकर चला जाता है। इस प्रकार वह चित्रा से कभी स्पष्ट कुछ भी नहीं कह पाता, उस पर अपना अधिकार

खो देता है। अपने को छोटा समझे जाने के डर से वह जो संयम रखता है, उससे पति–पत्नी का सम्बन्ध खोखला होकर एक दिन समाप्त हो जाता है। अपने शक के बारे में अपनी पत्नी से खुलकर बात न करके वह जो गलती करता है उसे वह स्वीकार करते हुए कहता है– ''और मैंने उस दिन बहुत गहराई से यह अनुभव किया था कि सचमुच एक तीसरा आदमी हमारे बीच कहीं उपस्थित है– हर बात उसी पर ढलती है। हर संशय वहो इशारा करता है, और हमारे बीच हर बार वही एक छाया आकर खड़ी हो जाती है, जिसे हम खुली आँखो से देखते हैं, पर कुछ कह नहीं पाते। .....मुझे लगता था कि उस तीसरे आदमी के बारे में बात करते ही कहीं बहुत छोटा हो जाऊँगा। और यह क्षुद्रता मुझे कभी भी चित्रा की आँखो में ऊपर नहीं उठने देगी। लेकिन आज मैं इस नतीजे पर पहुँच चुका हूँ कि पति–पत्नी के सम्बन्धों में यह संयम जहर घोल देता है। जो बात समाज के संदर्भ में सभ्य और शालीन है, वही बात पति–पत्नी के संदर्भ में गलत और अवास्तविक हो सकती है।''[10]

कमलेश्वर ने संदेह में घिरे व्यक्ति की मानसिक स्थिति का भी यथार्थ वर्णन किया है। जब नरेश को किसी काम के सिलसिले में कुछ दिनों के लिए दिल्ली से बाहर जाना पड़ता है और चित्रा और सुमन्त उस एक कमरे में रह रहे होते हैं तब नरेश की स्थिति अजीब सी हो जाती है। उसका मन–मस्तिष्क उस कमरे पर जाकर अटक जाता है। ''पर जैसे – जैसे शाम घिरती जा रही थी, मेरी आँखो के सामने वह कमरा नाच रहा था .....कुछ पल के लिए मैं प्रकृति की सुन्दरता में या साथियों की मजाकों में खो जाता, पर रह–रहकर दिमाग वहीं अटक जाता था। साथियों की निश्चितता देखकर मुझे ईर्ष्या हो रही थी और अपने ऊपर तरस आ रहा था। मुझे लगा कि दुनिया में शायद मैं सबसे अधिक शक्की आदमी हूँ। आखिर इतने लोग हैं और सबों की बीवियाँ है ....इन्हें ये दुश्चिताएं क्यों नहीं सताती ? क्या यह सब केवल मेरी जिन्दगी में ही है ? क्या मैं इस सताई हुई जिन्दगी का एकमात्र व्यक्ति हूँ और मेरा मन घुटने लगता। मुझे अपने पर शक होने लगता। शायद मैं नोर्मल नहीं था। शायद मुझे कुछ हो गया था।''[11] यहाँ व्यक्ति मन के द्वन्द्व, शंका, डर, हीनभावना, अहंभाव आदि का सफल अंकन हुआ है।

प्रस्तुत उपन्यास में आधुनिक पढ़ीलिखी निम्न मध्यमवर्गीय नारी के वास्तविक रूप को चित्रित किया गया है। जो आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होकर स्वाभिमान के साथ स्वतंत्र जीवन जीती है। कमलेश्वर ने यहाँ नारी को परम्परागत आदर्श भारतीय नारी की प्रतिमा से मुक्त कर यथार्थ की भूमि पर उतारा है। उसे सतीत्व और देवीत्व के सांचे से निकालकर सामान्य इंसान के रूप में देखने का प्रयास किया है। दिल्ली आने के बाद अपनी बोरियत दूर करने के लिए और कुछ आर्थिक सहयोग के लिए चित्रा सुमन्त की पत्रिका के लिए प्रूफ रीडिंग का कार्य करती है। फिर जब आर्थिक हालात बिगड़ने लगते हैं तो वह किसी स्कूल में लीव वैकेन्सी में पढ़ाने लगती है। वह पति की हर उचित–अनुचित आज्ञा का पालन करने वाली परम्परागत नारी नहीं है बल्कि नारी संहिता की जकड़न को तोड़कर अपने निर्णय की जिन्दगी जीने वाली स्वतंत्र नारी है। नरेश अपना तबादला दिल्ली से पटना करवाकर जब जाने लगता है तब वह चित्रा से नौकरी छोड़कर साथ चलने के लिए कहता है, लेकिन चित्रा, जो नरेश की पलायन वृत्ति व संदेहवृत्ति से दुःखी थी, कह देती है ''मैं इतनी बेचारी नहीं हूँ, जितना तुम समझ रहे हो। ...तो तुम ऐसे जा सकते हो, मैं नहीं जा सकती। नौकरी भी म छोड़ना नहीं चाहूँगी।''[12] सुमन्त जब आत्महत्या कर लेता है तब भी वह नरेश के पास लौटकर नहीं आती। नरेश के बार–बार छोड़कर चले जाने पर भी वह रोती–बिलखती नहीं, बल्कि आत्मविश्वास के साथ मुसीबतों के आगे डटी रहती है। वह अकेले रहकर, नौकरी करते हुए अपने बच्चों का पालन–पोषण करती है। वह परम्परागत व्यवस्था की जकड़न को चुनौती देती, संघर्षरत साहसी स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है।

इस प्रकार 'तीसरा आदमी' उपन्यास में कमलेश्वर ने विवाह, नौकरी, तबादला, आर्थिक अभाव और पति–पत्नी के बीच संशयवृत्त को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। निम्न मध्यवर्गीय युवक की हताशाओं, कुण्ठाओं और संदेहवृत्ति के कारण पारिवारिक विघटन का यहाँ अंकन हुआ है। निरन्तर आर्थिक दबाव को झेलते और संघर्ष करते–करते कस्बाई युवक नरेश महानगर में आकर टूट जाता है। लेखक ने उसे महानगरीय जीवन से ऊबकर कस्बे की ओर लौटते हुए चित्रित किया है। कमलेश्वर ने यहाँ वैवाहिक जीवन में किसी तीसरे की उपस्थिति से उत्पन्न मानसिक स्थितियों एवं समस्याओं का वास्तविक चित्रण किया है। साथ ही महानगर के परिवेश में आर्थिक अभाव, घुटन, कुण्ठा, अकेलेपन, ऊब, अलगाव के बीच जीने का विवश मध्यवर्गीय परिवार का यथार्थ चित्र अंकित किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कमलेश्वर, संस्करण : 2011, 'समग्र उपन्यास' (तीसरा आदमी), राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ सं. 160
2. कमलेश्वर, संस्करण : 2011, 'समग्र उपन्यास' (तीसरा आदमी), राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ सं. 163
3. कमलेश्वर, संस्करण : 2011, 'समग्र उपन्यास' (तीसरा आदमी), राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ सं. 167
4. कमलेश्वर, संस्करण : 2011, 'समग्र उपन्यास' (तीसरा आदमी), राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ सं. 179
5. कमलेश्वर, संस्करण : 2011, 'समग्र उपन्यास' (तीसरा आदमी), राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ सं. 169–170
6. कमलेश्वर, संस्करण : 2011, 'समग्र उपन्यास' (तीसरा आदमी), राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ सं. 172–173
7. कमलेश्वर, संस्करण : 2011, 'समग्र उपन्यास' (तीसरा आदमी), राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ सं. 168–169
8. कमलेश्वर, संस्करण : 2011, 'समग्र उपन्यास' (तीसरा आदमो), राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ सं. 203
9. कमलेश्वर, संस्करण : 2011, 'समग्र उपन्यास' (तीसरा आदमी), राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ सं. 194
10. कमलेश्वर, संस्करण : 2011, 'समग्र उपन्यास' (तीसरा आदमी), राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ सं. 182
11. कमलेश्वर, संस्करण : 2011, 'समग्र उपन्यास' (तीसरा आदमी), राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ सं. 185
12. कमलेश्वर, संस्करण : 2011, 'समग्र उपन्यास' (तीसरा आदमी), राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ सं. 205, 206